पतझड़ की आवाज़

कुर्रतुलऐन हैदर

पतझड़ की आवाज़

सुबह मैं गली के दरवाजे में खड़ी सब्जीवाले से गोभी की कीमत पर झगड़ रही थी। ऊपर रसोईघर में दाल-चावल उबालने के लिए चढा दिये थे। नौकर सौदा लेने के लिए बांजार जा चुका था। गुसलखाने में वकार साहब बेसिन के ऊपर लगे हुए धुंधले-से शीशे में अपना मुंह देखते हुए गुनगुना रहे थे और शेव करते जाते थे। मैं सब्जीवाले के साथ बहस करने के साथ-साथ सोचने में व्यस्त थी कि रात के खाने के लिए

क्या-क्या बना लिया जाए। इतने में सामने एक कार आकर रुकी। एक लड़की ने खिड़की में से झांका और दरवाजा खोलकर बाहर उतर आयी। मैं पैसे गिन रही थी, इसलिए मैंने उसे न देखा। वह एक कदम आगे बढ़ी। अब मैंने सिर उठाकर उस पर नंजर डाली।

अरे!...तुम... उसने हक्की-बक्की होकर कहा और ठिठककर रह गयी। ऐसा लगा जैसे वह मुद्दतों से मुझे मरी हुई सोचे बैठी है और अब मेरा भूत उसके सामने खड़ा है।

उसकी आंखों में एक क्षण के लिए जो डर मैंने देखा, उसकी याद ने मुझे बावला-सा कर दिया है। मैं तो सोच-सोचकर पागल हो जाऊंगी।

यह लड़की, इसकी नाम तक मुझे याद नहीं, और इस समय मैंने झेंप के मारे उससे पूछा भी नहीं, वरना वह कितना बुरा मानती! मेरे साथ दिल्ली के क्वीन मेरी स्कूल में पढ़ती थी। यह बीस साल पहले की बात है। मैं उस समय यही कोई सत्रह वर्ष की रही हूंगी लेकिन मेरा स्वास्थ्य इतना अच्छा था कि अपनी उम्र से कहीं बड़ी लगती थी और मेरे सौन्दर्य की धूम मचनी शुरू हो चुकी थी। दिल्ली का रिवांज था कि लड़के वालियां स्कूल-स्कूल घूमकर लड़कियां पसन्द करती फिरती थीं और जो लड़की पसन्द आती थी उसके घर'रुक्का' भिजवा दिया जाता था। उन्हीं दिनों मुझे यह ज्ञात हुआ कि इस लड़की की मां-मौसी आदि ने मुझे पसन्द कर लिया है (स्कूल डे के उत्सव के दिन देखकर) और अब वे मुझे बहू बनाने पर तुली बैठी हैं। ये लोग नूरजहां रोड पर रहते थे और लड़का हाल ही में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया में दो-डेढ़ सौ रुपये मासिक पर नौकर हुआ था। चुनाचे 'रुक्का' मेरे घर भिजवाया गया। लेकिन मेरी अम्माजान मेरे लिए बड़े-बड़े सपने देख रही थीं। मेरे अब्बा दिल्ली से बाहरमेरठ में रहते थे और अभी मेरे विवाह का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था इसलिए वह प्रस्ताव एकदम अस्वीकार कर दिया गया।

इसके बाद यह लड़की कुछ दिन तक मेरे साथ कॉलेज में भी पढ़ी। फिर इसकी शादी हो गयी और यह कॉलेज छोड़कर चली गयी। आज बहुत दिनों बाद माल रोड के पिछवाड़े इस गली में मेरी उससे भेंट हुई। मैंने उससे कहा, "ऊपर आओ, चाय-वाय पीयो, इत्मीनान से बैठकर बातें करेंगे।" लेकिन उसने कहा, "मैं जल्दी में किसी ससुराली

रिश्तेदार का मकान ढूंढती हुई इस गली में आ निकली थी। इंशाअल्लाह ! मैं फिर कभी जरूर आऊंगी।" इसके बाद उसने वहीं खड़े-खड़े जल्दी-जल्दी एक-एक करके सारी पुरानी सहेलियों के किस्से सुनाएकौन कहां है और क्या कर रही है। सलमा अमुक ब्रिगेडियर की पत्नी है, चार बच्चे हैं, परखुदा का पति 'फौरिन सरविस' (विदेश मन्त्रालय) में है, उसकी बड़ी लड़की लन्दन में पढ़ रही है। रेहाना अमुक कॉलेज में प्रिंसिपल हैं। सईदा अमरीका से ढेरों डिग्रियां ले आयी है और कराची में किसी ऊंचे पद पर विराजमान है। कॉलेज की हिन्दू सहेलियों के बारे में भी उसे पता था कि प्रभा का पति इंडियन नेवी में कमांडर है। वह बम्बई में रहती है। सरला ऑल इंडिया रेडियो में स्टेशन डायरेक्टर है और दक्षिण भारत में कहीं है। लोतिका बड़ी प्रसिध्द चित्रकार बन चुकी है और नई दिल्ली में उसका स्टुडियो है, आदि-आदि। वह यह बातें कर रही थी लेकिन उसकी आंखों के डर को मैं न भूल सकी।

उसने कहा, "मैं, सईदा, रेहाना आदि जब भी कराची में इकट्ठा होती हैं तुम्हें बराबर याद करती है।"

"सचमुच...?" मैंने खोखली हंसी हंसकर पूछा। मुझे पता था मुझे किन शब्दों में याद किया जाता होगा। पिच्छल परछाइयां ! अरे क्या वे लोग मेरी सहेलियां थीं! स्त्रियां वास्तव में एक-दूसरे के सम्बन्ध में चुडैलें होती हैंकुटनियां कुलटाएं! उसने मुझसे यह नहीं पूछा था कि यहां अंधेरी गली में इस खंडहर जैसे मकान में क्या कर रही हूं। उसे पता था।

स्त्रियों की 'इंटेलीजेंस सर्विस' इतनी तेज होती है कि खुफिया विभाग का विशेषज्ञ भी उसके आगे पानी भरे, और फिर मेरी कहानी तो इतनी दु:ख भरी है। मेरी दशा कोई उल्लेखनीय नहीं। गुमनाम हस्ती हूं इसलिए किसी को मेरी चिन्ता नहीं, स्वयं मुझे भी अपनी चिन्ता नहीं।

मैं तनवीर फातिमा हूं। मेरे मां-बाप मेरठ के रहने वाले थे। वे साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। हमारे यहां बड़ा कड़ा पर्दा किया जाता है। स्वयं मेरा अपने चचाजान, फुफेरे भाइयों से पर्दा था। मैं असीम लाड़-प्यार में पली चहेती लड़की थी। जब मैंने स्कूल में बहुत-से वजीफे ले लिये तो मैट्रिक करने के लिए विशेष रूप से मुझे क्वीन

मेरी स्कूल में दाखिल कराया गया। इंटर के लिए अलीगढ़ भेज दी गयी। अलीगढ़ गर्ल्स कॉलेज के दिन मेरे जीवन के सबसे अच्छे दिन थे . क्या स्वप्न भरे मदमाते दिन थे। मैं भावुक नहीं, लेकिन अब भी जब कॉलेज का सहन, लॉन, घास के ऊंचे पौधे पेड़ों पर झुकी बारिश, नुमाइश के मैदान में घूमते हुए काले बुर्कों के परे होस्टल के संकरे-संकरे बरामदों, छोटे-छोटे कमरों का वह कठोर वातावरण याद आता है तो जी डूब-सा जाता है। एम.एस-सी. के लिए फिर दिल्ली आ गयी। यहां कॉलेज में मेरे साथ ये ही सब लड़कियां पढ़ती थीं सईदा, रेहाना, प्रभा, फलानी-ढिमाकी। मुझे लड़कियां पसन्द नहीं आयीं मुझे दुनिया में अधिकतर लोग पसन्द नहीं आये। अधिकतर लोग व्यर्थ ही समय नष्ट करने वाले हैं। मैं बहुत दम्भी थी। सौन्दर्य ऐसी चीज है कि आदमी का दिमांग खराब होते देर नहीं लगती। फिर मैं तो लाखों में एक थीशीशे का एक झलकता हुआ रंग, लालिमा लिये हुए सुनहरी बाल, एकदम हृष्ट-पुष्ट, बनारसी साड़ी पहन लूं तो बिलकुल कहीं की महारानी लगती थी।

ये विश्वयुध्द के दिन थे या शायद युध्द इसी साल खत्म हुआ था, मुझे ठीक से याद नहीं है। बहरहाल, दिल्ली पर बहार आयी हुई थी। करोड़पति कारोबारियों और भारत-सरकार के बड़े-बड़े अफसरों की लड़कियां
हिन्दू-सिख-मुसलमान...लम्बी-लम्बी मोटरों में उड़ी-उड़ी फिरतीं। नित नई पार्टियां, उत्सव, हंगामेआज इन्द्रप्रस्थ कॉलेज में ड्रामा है, कल मिरांडा हाउस में,परसों लेडी इरविन कॉलेज में संगीत-सभा है। लेडी हार्डिंग और सेंट स्टीफेन्स कॉलेज, चेम्सफोर्ड क्लब, रोशनआरा, अमीरिल जीमखानामतलब यह कि हर ओर अलिफ-लैला के बाल बिखरे पड़े थे हर स्थान पर नौजवान फौजी अफसरों और सिविल सर्विस के अविवाहित पदाधिकारियों के ठट डोलते दिखाई देते। एक हंगामा था।

प्रभा और सरला के साथ एक दिन दिलजीतकौर के यहां, जो एक करोड़पति सिख कांट्रैक्टर की लड़की थी, किंग एडवर्ड रोड की एक शानदार कोठी में गार्डन पार्टी में निमन्त्रित थी।

यहां मेरी भेंट मेजर खुशवक्तसिंह से हुई। वह झांसी की तरफ का चौहान राजपूत था। लम्बा-तगड़ा, काला भुजंग, लम्बी-लम्बी ऊपर को मुड़ी हुई नुकीली मूंछें, बेहद चमकते और खूबसूरत दाँत, हंसता तो बहुत अच्छा लगता। गालिब का उपासक था।

बात-बात में शेर पढ़ता, कहकहे लगाता और झुक-झुककर बहुत ही सभ्यतापूर्वक सबसे बातें करता। उसने हम सबको दूसरे दिन सिनेमा चलने का निमन्त्रण दिया। सरला, प्रभा एक ही बददिमांग लड़कियां थीं और अच्छी-खासी रूढिवादी थीं। वे लड़कों के साथ बाहर घूमने बिलकुल नहीं जाती थीं। खुशवक्तसिंह दिलजीत के भाई का मित्र था। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं उसे क्या उत्तर दूं कि इतने में सरला ने चुपके से कहा, "खुशवक्त के साथ हरगिज सिनेमा न जाना, बड़ा लोफर लड़का है।" मैं चुप हो गयी।

इन दिनों नई दिल्ली के एक-दो आवारा लड़कियों के किस्से बहुत मशहूर हो रहे थे और मैं सोच-सोचकर ही डरा करती थी। शरींफ खानदानों की लड़कियां अपने मां-बाप की आंखों में धूल झोंककर किस तरह लोगों के साथ रंग-रेलियां मनाती हैं। होस्टल से प्राय: इस प्ररकार की लड़कियों के सम्बन्ध में अटकलें लगाया करतीं। वे बहुत ही अजीब और रहस्यमयी हस्तियां मालूम होती, यद्यपि देखने में वे भी हमारी ही तरह की लड़कियां थीं साड़ियां सलवारें पहने, बाकी सुन्दर और पढ़ी-लिखी।

"लोग बदनाम करते हैं जी", सईदा दिमाग पर बड़ा जोर डालकर कहती, "अब ऐसा भी क्या है?"

"वास्तव में हमारी सोसाइटी ही अभी इस योग्य नहीं हुई कि पढ़ी-लिखी लड़कियों को अपने में समो सके।" सरला कहती।

"होता यह है कि लड़कियां सन्तुलन-भावना को खो बैठती हैं।" रेहाना अपना मत प्रकट करती।

जो भी हो, किसी भी तरह विश्वास न होता कि हमारी जैसी हमारे ही साथ की कुछ लड़कियां ऐसी-ऐसी भयानक करतूतें किस तरह करती हैं।

दूसरी शाम को मैं लेबोरेटरी की ओर जा रही थी कि निकल्सन मेमोरियल के पास एक किरमिची रंग की लम्बी-सी कार धीरे-से रुक गयी। उसमें से खुशवक्तसिंह ने झांका और अंधेरे में उसके खूबसूरत दाँत झिलमिलाए।

"अजी देवीजी, यों कहिए कि आप अपना कल वाला एप्वाइंटमेंट भूलगयीं।"

"जी...?" मैंने हड़बड़ाकर कहा।

"हुंजूरेआला चलिए मेरे साथ फौरन! यह शाम का वक्त लेबोरेटरी में घुसकर बैठने का नहीं है। इतना पढ़कर क्या कीजिएगा?"

मैंने बिलकुल यों ही अपने चारों ओर देखा और कार में दुबककर बैठ गयी।

हमने कनॉट प्लेस जाकर एक अंग्रेजी फिल्म देखी।

उसके अगले दिन भी।

इसके बाद मैंने एक हफ्ते तक उसके साथ खूब सैर की। वह 'मेडेंस' में ठहरा हुआ था।

उस सप्ताह के अन्त तक मैं मेजर खुशवक्तसिंह की श्रीमती बन चुकी थी।

मैं साहित्यिक नहीं हूं। मैंने चीनी, जापानी, रूसी, अंग्रेजी या उर्दू कवियों का अध्ययन नहीं किया। साहित्य पढ़ना मेरे विचार से समय बर्बाद करना है। पन्द्रह वर्ष की आयु से विज्ञान ही मेरा ओढ़ना-बिछौना रहा है। मैं नहीं जानती कि आध्यात्मिक कल्पनाएं क्या होती हैं और रहस्यवाद का क्या अर्थ है। काव्य और दर्शन के लिए मेरे पास न तब समय था और न अब है। मैं बड़े-बड़े, उलझे हुए, अस्पष्ट और रहस्यपूर्ण शब्द भी प्रयोग नहीं कर सकती।

बहरहाल, पन्द्रह दिन के अन्दर-अन्दर यह घटना भी कॉलेज में सबको मालूम हो गयी थी, लेकिन मुझमें अपने अन्दर हमेशा से एक विचित्र-सा आत्मविश्वास था। मैंने चिन्ता नहीं की। पहले भी मैं लोगों से बोल-चाल बहुत कम रखती थी। सरला वगैरह का गुट अब मुझे ऐसी निगाहों से देखता जैसे मैं मंगल ग्रह से उतरकर आयी हूं मेरे सिर पर सींग हैं। डाइनिंग हॉल में मेरे बाहर जाने के बाद घंटों मेरे किस्से दुहराए जाते। अपनी इंटेलीजेन्स सार्विस के जरिए मेरे और खुशवक्त के बारे में उनको पल-पल की खबर रहतीहम लोग शाम को कहां गये, रात को नई दिल्ली के कौन से

बालरूम में नाचे (खुशवक्त मार्के का डान्सर था, उसने मुझे नाचना भी सिखा दिया था) खुशवक्त ने मुझे कौन-कौन से तोहंफे, कौन-कौन सी दुकान से खरीद कर दिये।

खुशवक्तसिंह मुझे मारता बहुत था और मुझसे इतना प्यार करता था जितना आज तक दुनिया में किसी भी पुरुष ने किसी भी स्त्री से न किया होगा।

कई महीने बीत गये। मेरी एम. एस-सी. प्रिवियस की परीक्षा सिर पर आ गयी और मैं पढ़ने में जुट गयी। परीक्षाएं होने के बाद उसने कहा, "जानेमन, दिलरुबा! चलो किसी खामोश-से पहाड़ पर चलेंसोलन, डलहौजी, लेनसाउ।" मैं कुछ दिन के लिए मेरठ गयी और अब्बा से यह कह कर (अम्माजान का, जब मैं थर्ड ईयर में थी, स्वर्गवास हो गया था) दिल्ली वापस आ गयी कि अन्तिम वर्ष के लिए बेहद पढ़ाई करनी है। उत्तर भारत के पहाड़ी स्थानों पर बहुत-से परिचितों के मिलने की सम्भावना थी, इसलिए हम सुदूर दक्षिण में आउटी चले गये। वहां महीना-भर रहे। खुशवक्त की छुट्टियां खत्म हो गयीं तो दिल्ली वापस आकर तिमारपुर के एक गांव में टिक गये।

कॉलेज खुलने से एक हफ्ता पहले मेरी और खुशवक्त की जबर्दस्त लड़ाई हुई। उसने मुझे खूब मारा। इतना मारा कि मेरा चेहरा लहूलुहान हो गया और मेरी बांहों और पिंडलियों पर नील पड़ गये। लड़ाई का कारण उसकी वह मुरदार ईसाई मंगेतर थी जो न जाने कहां से टपक पड़ी थी और सारे शहर में मेरे खिलांफ जहर उगलती फिर रही थी। अगर उसका बस चलता तो मुझे कच्चा चबा जाती। वह चार सौ बीस लड़की महायुध्द के दिनों में फौज में थी और खुशवक्त को तर्मा के मोर्चे पर मिली थी।

खुशवक्त न जाने किस तरह उसे उसके साथ शादी करने का वचन दे दिया था, पर मुझसे मिलने के बाद वह अब उसकी अंगूठी वापस करने पर तुला बैठा था।

उस रात तिमारपुर के सुनसान बंगले में उसने मेरे हाथ जोड़े और रो रोकर मुझसे कहा कि मैं उससे विवाह कर लूं। अन्यथा वह मर जाएगा। मैंने कहाहरगिंज नहीं, कयामत तक नहीं। मैं शरीफ घराने की सैयदंजादी हूं, भला मैं उस काले तम्बाकू के पिंडे हिन्दू जाति के आदमी से शादी करके खानदान के माथे पर कलंक का टीका लगाती! मैं तो उस सुन्दर और रूपवान किसी बहुत से ऊंचे मुसलमान घराने के कुल-दीप के स्वप्न

देख रही थी जो एक दिन देर-सबेर बरात लेकर मुझे ब्याहने आएगा, हमारा आरसी मुसाहिफ होगा, मैं ठाट-बाट से मायके से विदा होकर उसके घर जाऊंगी, छोटी ननदें दरवाजे पर देहली रोककर अपने भाई से नेग के लिए झगड़ेंगी, मीरासिनें ढोलक लिये खड़ी होंगी। क्या-क्या कुछ होगा! मैंने क्या हिन्दू-मुस्लिम शादियों का परिणाम देखा नहीं था। कइयों ने प्रगतिवाद या प्यार की भावना के जोश में हिन्दुओं से शादियां रचायी और सालभर बाद जूतियों में दाल बटी ! बच्चों का भविष्य बिगड़ा वह अलगन इधर के रहे न उधर के। मेरे इनकार करने पर खुशवक्त ने जूते-लातों से मार-मारकर मेरा कचूमर निकाल दिया और तीसरे दिन उस डायन काली बला कैथरिन धर्म-दास के साथ आगरे चला गया जहां उस कमीनी लड़की से सिविल मैरिज कर ली।

जब मैं नई टर्म शुरू होने पर होस्टल पहुंची तो इस हुलिये से कि मेरे सिर और मुंह पर पट्टी बंधी हुई थी। अब्बा को मैंने लिख भेजा कि लेबोरेटरी में एक एक्सपेरीमेंट कर रही थी कि एक खतरनाक एसिड भक से उड़ा और उससे मेरा मुंह थोड़ा-सा जल गया। अब बिलकुल ठीक हूं , आप बिलकुल चिन्ता न करें।

लड़कियों को तो पहले ही सारा किस्सा मालूम था, इसलिए उन्होंने औपचारिक रूप से मेरी खैर-खबर न पूछी। इतने बड़े स्कैंडल के बाद मुझे होस्टल में रहने की अनुमति न दी जाती, लेकिन होस्टल की वार्डन खुशवक्त सिंह की गहरी दोस्त थी इसलिए सब खामोश रहे। इसके अतिरिक्त किसी के पास किसी प्रकार का प्रमाण भी न था। कॉलेज की लड़कियों को लोग यों भी खामंखाह बदनाम करने पर तुले रहते है।

मुझे वह वक्त अच्छी तरह याद है, जैसे कल ही की बात हो, सुबह के ग्यारह बजे होंगे। रेलवे स्टेशन से लड़कियों के तांगे आकर फाटक में घुस रहे थे, होस्टल के लॉन पर बरगद के पेड़ के नीचे लड़कियां अपना-अपना सामान उतरवाकर रखवा रही थीं। बड़ी चिल्ल-पों मचा रखी थीं। जिस समय मैं अपने तांगे से उतरी व मेरा ढाठे से बन्धा सफेद चेहरा देखकर इतनी आश्चर्यचकित हुई जैसे सबको सांप सूंघ गया हो। मैंने अपना सामान चौकीदार के सिर पर रखवाया और अपने कमरे की ओर चली गयी। दोपहर को जब मैं खाने की मेज पर आकर बैठी तो उन कुलटाओं ने मुझसे इस ढंग से औपचारिक बातें शुरू की जिनसे भली-भांति यह प्रकट हो जाए कि मेरी इस दुर्घटना का वास्तविक कारण उन्हें पता है और मुझे अपमानित होने से बचाने के लिए उसकी

चर्चा ही नहीं कर रहीं है। उनमें से एक ने जो उस चंडाल चौकड़ी का केन्द्र और उन सबकी उस्ताद थी, रात को खाने की मेज पर निर्णय दिया कि मैं एक कामी स्त्री हूं। मेरी जासूसों द्वारा यह सूचना तुरन्त ऊपर मेरे पास पहुंच गयी जहां मैं उस समय अपने कमरे में खिड़की के पास टेबुल लैम्प लगाये पढ़ाई में व्यस्त थी और इस तरह की बातें तो अब आम थीं कि बेपर्दगी आंजादी खतरनाक है और ऊंची शिक्षा बदनाम है आदि-आदि।

मैं अपनी सीमा तक शत-प्रतिशत इन बातों से सहमत थी। मैं स्वयं सोचती थी कि कुछ अच्छी-खासी, भली-चंगी, उच्च शिक्षा-प्राप्त लड़कियां आवारा क्यों हो जाती हैं। एक विचारधारा थी कि वही लड़कियां आवारा होती हैं जिनके पास सूझ-बूझ बहुत कम होती है। मानव-मस्तिष्क कभी भी अपनी बर्बादी की ओर जान-बूझकर कदम नहीं उठाएगा लेकिन मैंने तो अच्छी-खासी समझदार, तेजो-तर्रार लड़कियों को आवारागर्दी करते देखा था। दूसरी विचारधारा थी कि-रुपये-पैसे, ऐशो-आराम का जीवन, कीमती भेंटों का लालच, रोमांस की खोज,साहसिक कार्य करने की अभिलाषा या मात्र उकताहट या पर्दे के बन्धनों के बाद स्वतंत्रता के वातावरण में प्रवेश कर पुराने बन्धनों से विद्रोह इस आवारगी के कुछ कारण है। ये सब बातें अवश्य होंगी, अन्यथा और क्या कारण हो सकता है?

मैं अपनी पहली तिमाही परीक्षा से छूटी थी कि खुशवक्त भी आ पहुंचा। उसने मुझे लेबोरेटरी में फोन किया कि मैं नरूला में छः बजे उससे मिलूं। मैंने ऐसा ही किया। वह कैथरिन को अपने मां-बाप के पास छोड़कर एक सरकारी काम से दिल्ली आया था। इस बार हम हवाई जहाज से एक सप्ताह के लिए बम्बई चले गये।

इसके बाद हर दूसरे-तीसरे महीने मिलना होता रहा। एक साल बीत गया। इस बार जब वह दिल्ली आया तो उसने अपने एक निकटतम मित्र को मुझे लेने के लिए मोटर लेकर भेजा क्योंकि वह लखनऊ से लाहौर जाते हुए पालम पर कुछ घंटों के लिए ठहरा था। यह मित्र दिल्ली के एक बहुत बड़े मुसलमान व्यापारी का लड़का था। लड़का तो खैर नहीं कहना चाहिए, उस समय वह चालीस के पेटे में रहा होगाबीवी-बच्चोंवाला। ताड़-सा कद। बेहद गलत अंग्रेजी बोलता था, काला, बदसूरत बिलकुल चिड़ीमार की शक्ल, होशो-हवाश ठीक-ठाक।

खुशवक्त इस बार दिल्ली से गया तो फिर कभी वापस न आया क्योंकि अब मैं फारूक की पत्नी बन चुकी थी।

फारूक के साथ अब मैं उसकी मंगेतर की हैसियत से बांकायदा दिल्ली की ऊंची सोसायटी में शामिल हो गयी। मुसलमानों में तो चार शादियां तक उचित हैं, इसलिए कोई बहुत बड़ी बात न थी, अर्थात धर्म की दृष्टि से कि वह अपनी अनपढ़, अधेड़ उम्र की पर्दे की पत्नी के होते हुए एक पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करना चाहता था, जो चार आदमियों में ढंग से बैठ सके और फिर धनिक वर्ग में सब कुछ उचित है। यह तो हमारे मध्यवर्गीय समाज के ही नियम हैं कि यह न करो, वह न करो। लम्बी छुट्टियों के दिनों में फारूक ने भी मुझे खूब सैर करायीकलकत्ता, लखनऊ, अजमेरकौन-सी जगह थी जो मैंने उसके साथ न देखी। उसने मुझे हीरे-जवाहरात के गहनों से लाद दिया। अब्बा को लिख भेजती थी कि यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के साथ 'टूर' पर जा रही हूं या अमुक स्थान पर साइंस कान्फ्रेन्स में भाग लेने के लिए मुझे बुलाया गया है, लेकिन साथ-ही-साथ मुझे अपनी शिक्षा का रिकार्ड ऊंचा रखने की धुन थी। फाइनल परीक्षा में मैंने बहुत ही खराब पर्चे किये और परीक्षाएं समाप्त होते ही घर चली गयी।

उन्हीं दिनों दिल्ली में गड़बड़ी शुरू हुई और लड़ाई-झगड़ों को भूचाल आ गया। फारूक ने मुझे मेरठ पत्र लिखा कि तुम अविलम्ब पाकिस्तान चली जाओ, मैं तुमसे वहीं मिलूंगा। मेरा पहले ही से यह इरादा था। अब्बा भी बेहद परेशान थे और यही चाहते कि इन हालात में मैं हिन्दुस्तान में न रुकूं, यहां मुसलमान लड़कियों की इंज्जतें निश्चित रूप से खतरे में हैं। पाकिस्तान अपना इस्लामी देश था, उसकी तो बात ही क्या थी। अब्बा जमीन-जायदाद वगैरह के कारण अभी देश छोड़कर नहीं जा सकते थे। मेरे दोनों भाई बहुत छोटे-छोटे थे और अम्माजान के स्वर्गवास के बाद अब्बा ने उनको मेरी फूफी के पास हैदराबाद दकन भेज दिया था। मेरा परिणाम निकल चुका था और मैं तीसरी श्रेणी में पास हुई थी। मेरा दिल टूट गया। जब बवलों को जोर कुछ कम हुआ तो मैं हवाई जहांज से लाहौर आ गयी। फारूक मेरे साथ आया। उसने यह कार्यक्रम बनाया था कि अपने कारोबार की एक ब्रांच पाकिस्तान में स्थापित करके लाहौर उसका हेड ऑफिस रखेगा। मुझे उसका मालिक बनाएगा और वहीं मुससे शादी कर लेगा। वह दिल्ली छोड़ नहीं रहा था क्योंकि उसके बाप बड़े उदारवादी विचारों के

आदमी थे। योजना यह बनी कि वह हर दूसरे-तीसरे महीने दिल्ली से लाहौर आता रहेगा। लाहौर अफरा-तफरी थी। यद्यपि एक-से-एक अच्छी कोठी अलाट हो सकती थी लेकिन फारूक यहां किसी को जानता न था। बहरहाल, सन्तनगर में एक छोटा-सा मकान मेरे नाम अलाट कराके उसने मुझे वहां छोड़ दिया और मेरी देख-भाल, सहायता के लिए अपने एक दूर के रिश्तेदार कुटुम्ब को मेरे पास छोड़ दिया जो शरणार्थी होकर लाहौर आया था और मारे-मारे फिर रहा था।

मैं जीवन के इस अचानक परिवर्तन से इतनी हक्की-बक्की थी कि मेरी समझ में न आता था कि क्या हो गया ! कहां अविभाज्य भारत की वह भरपूर, दिलचस्प, रंगारंग दुनिया, कहां सन् 48 के लाहौर का वह छोटा और अंधेरा मकान! देश त्याग! अल्लाहो-अकबर मैंने कैसे-कैसे दिल हिला देने वाले दिन देखे हैं।

मेरा मस्तिष्क इतना खोखला हो चुका था कि मैंने नौकरी ढूंढ़ने की भी कोई कोशिश नहीं की। रुपये-पैसे की ओर से चिन्ता न थी, क्योंकि फारूक मेरे नाम दस हजार रुपये जमा करा गया थासिर्फ दस हजार, वह स्वयं करोड़ों का आदमी था, लेकिन उस समय मेरी समझ में कुछ न आता था, अब भी नहीं आता।

दिन बीतते गये। मैं सुबह से शाम तक पंलग पर पड़ी फारूक की मौसी या नानी, जो कुछ भी हो वे बड़ी थीं, उनके देश-त्याग की आपत्तियों की रामकहानी और उनकी साबकाए-इमारत के किस्से सुन करती और पान-पर-पान खाती या उनकी पढ़नेवाली बेटी को एलजबरा-ज्योमेट्री सिखाया करती। उनका बेटा बराए नाम फारूक के कारोबार की देखभाल कर रहा था।

फारूक साल में पांच-छ: चक्कर लगा लेता। अब लाहौर का जीवन धीरे-धीरे साधारण होता जा रहा था। उसके आने से मेरे दिन कुछ अच्छी तरह कटते। उसकी मौसी बड़े प्रयत्न से दिल्ली के खाने तैयार करती। मैं माल के हेयर ड्रेसर के यहां जाकर अपने बाल सेट करवाती। शाम को हम दोनों जीमखाना क्लब चले जाते और वहां एक कोने की मेज पर बियर के गिलास सामने रखे फारूक मुझे दिल्ली की घटनाएं सुनाता। वह बेथके बोले जाता या कुछ देर के लिए चुप होकर कमरे में आनेवाली अजनबी सूरतों को देखता रहता। उसने शादी की कभी कोई चर्चा नहीं की। मैंने भी उससे नहीं कहा।

मैं अब उकता चुकी थी। किसी चीज से कोई अन्तर नहीं पड़ता। जब वह दिल्ली चला जाता तो हर पन्द्रहवें दिन मैं अपनी कुशलता का पत्र और उसके कारोबार का हाल लिख भेजती और लिख देती कि इस बार आये तो कनाट प्लेस या चांदनी चौक की अमुक दुकान से अमुक-अमुक प्रकार की साड़ियां लेता आये क्योंकि पाकिस्तान में ऐसी साड़ियां नापैद हैं।

एक दिन मेरठ से चाचा मियां का पत्र आया कि अब्बाजान का स्वर्गवास हो गया।

"जब हमदे मरसल न रहे कौन रहेगा**?**"

मैं मनोभावों से परिचित नहीं हूं , लेकिन अब्बा मुझ पर जान छिड़कते थे। उनकी मृत्यु का मुझे बड़ा दु:ख हुआसदमा पहुंचा। फारूक ने मुझे बड़े प्यार से दिलासा-भरे पत्र लिखे तो तनिक ढाढ़स बन्धी। उसने लिखा, "नमांज पढ़ा करो! बहुत बुरा वक्त है। दुनिया में काली आंधी चल रही है, सरज डेढ़ बलम पर आया चाहता है। एक पल का भरोसा नहीं।" सारे व्यापारियों की तरह वह भी बड़ा धार्मिक और अन्धविश्वासी था। नियमपूर्वक अजमेर शरीफ जाता, निजूमियों, रम्मानों, पंडितों, सियानों, पीरो, फकीरों, शकुन-अपशकुनों, स्वप्नों का परिणामअर्थात प्रत्येक चीज में विश्वास करता था। एकाध महीने मैंने नमांज भी पढ़ी लेकिन जब मैं सिजदा करती तो जी चाहता कि जोर-जोर से हंसू।

देश में साइंस की प्राध्यापिकाओं की बडी मांग थी। जब मुझे एक स्थानीय कॉलेजवालों ने बहुत विवश किया तो मैंने पढ़ाना शुरू कर दिया, यद्यपि टीचरी करने से मुझे सख्त नफरत है। कुछ समय बाद मुझे पंजाब के एक पिछड़े जिले के गर्ल्स कॉलेज में बुला लिया गया। कई साल तक मैंने वहां काम लिया। मुझसे मेरी शिष्याएं प्राय: पूछतीं"हाए अल्लाहे तनवीर आप इतनी प्यारी-सी हैं, आप अपने करोड़पति मंगेतर से शादी क्यों नहीं कर लेती?"

इस प्रश्न का स्वयं मेरे पास भी कोई उत्तर नहीं था।

यह नया देश था, नए लोग, नया सामजिक जीवन यहां किसी को मेरे भूतकाल के बारे में पता न था। कोई भी भला आदमी मुझसे शादी करने को तैयार हो सकता था।

(लेकिन भले आदमी, सुन्दर सीधे-सादे सभ्य लोग मुझे पसन्द ही नहीं आते थे, मैं क्या करती!) दिल्ली के किस्से दिल्ली ही में रह गये और फिर मैंने यह देखा है कि एक-से-एक हर्राफा लड़कियां अब ऐसी सदाचारिणी बनी हुई हैं कि देखा ही कीजिए। स्वयं एट्थ हरीराम और रानीखान के उदाहरण मेरे सामने थे।

अब फारूक भी कभी-कभी आता। हम लोग इस तरह मिलते जैसे बीसियों साल के पुराने विवाहित पति-पत्नी हैं जिनके पास सब-के-सब नए विषय खत्म हो चुके हैं और अब शान्ति, विश्राम और ठहराव का समय है। फारूक की बेटी की अभी हाल ही में दिल्ली में शादी हुई है। उसका पति ऑक्सफोर्ड जा चुका है। पत्नी को स्थायी रूप से दमा रहता है। फारूक ने अपने व्यवसाय की शाखाएं बाहर कई देशों में फैला दी हैं। नैनीताल में नया मकान बनवा रहा है। फारूक अपने खानदान के किस्से, व्यवसाय की बातें मुझे विस्तार से सुनाया करता और मैं उसके लिए पान बनाती रहती।

एक बार मैं छुट्टियों में कॉलेज से लाहौर गयी तो फारूक के पुराने दोस्त सैयद वकार हुसैनंखां से मेरी भेंट हुई। लम्बा कद, मोटे-ताजे, काले तवे जैसा रंग, उम्र में पैंतालीस के लगभगअच्छे-खासे देव-पुत्र मालूम होते। उनको पहली बार मैंने नई दिल्ली में देखा था। जहां उनका डांसिंग स्कूल था। ये रामपुर के एक शरीफ घराने के इकलौते बेटे थे, बचपन में घर से भाग गये। सरकसवालों और थियेटर कम्पनियों के साथ देश-विदेश घूमे सिंगापुर, हांगकांग, शंघाई, लन्दन जाने कहां-कहां। अनगिनत जातियों और नस्लों की स्त्रियों से शादियां रचायीं। उनकी वर्तमान पत्नी उड़ीसा के एक मारवाड़ी महाजन की लड़की थी जिसको ये कलकत्ता से उड़ा लाये थे। बारह-पन्द्रह साल पहले मैंने उसे दिल्ली में देखा था। सांवली-सांवली-सी मंझले कद की लड़की थी। उसकी शक्ल पर अजीब तरह का दर्द बरसता, मगर सुना था कि बड़ी पतिव्रता स्त्री थी। पति के दुर्व्यवहार से तंग आकर इधर-उधर भाग जाती लेकिन कुछ दिन बाद फिर वापस आ जाती। खां साहब ने कनॉट सरकस की एक बिल्डिंग की तीसरी मंजिल में अंग्रेजी नाच सिखाने का स्कूल खोल रखा था, जिसमें वे, उनकी पत्नी, दो एंगलोइंडियन लड़कियांस्टॉफ में शामिल थीं। महायुध्द के दिनों में स्कूल पर धन बरसा। हर इतवार की सुबह वहां गयी थी। सुना था कि वकार साहब की पत्नी महासती अनुसूइया का अवतार है कि उनके पति आज्ञा देते हैं कि अमुक-अमुक

लड़की से बहनापा गांठों और उसे मुझसे मिलाने के लिए ले आओ और वह नेकबख्त ऐसा ही करती। एक बार वह हमारे होस्टल भी आयी और कुछ लड़कियों के सिर हुई कि वह उसके साथ चलकर बारहखम्बा रोड पर चाय पीएं।

भारत-विभाजन के बाद वकार साहब, उनके कथनानुसार, लुट-लुटा-कर लाहौर आ पहुँचे थे और माल रोड के पीछे एक फ्लैट अलाट कराके उसमें अपना स्कूल खोल लिया था। शुरू-शुरू में तो कारोबार मन्दा रहा। दिलों पर मुर्दनी छायी हुई थी, नाचने-गाने का किसे होश था। इस फ्लैट में भारत-विभाजन से पूर्व आर्यसमाजी हिन्दुओं का संगीत-विद्यालय था। लकड़ी के फर्श का हॉल, बंगले में दो छोटे-छोटे कमरे, गुसलखाना, रसोईघर। सामने लकड़ी की बॉलकनी और टूटा-फूटा हिलता हुआ जीना। 'भारत माता संगीत विद्यालय' का बोर्ड बॉलकनी के जंगले पर अब तक टेढ़ा लटका हुआ था। उसे उतारकर 'वकारंज स्कूल ऑफ बॉलरूम एंड टप डांर्सिंग' का बोर्ड लगा दिया गया। अमरीकन फिल्मी पत्रिकाओं में से काटकर जेन केली, फरीदा स्टीयर, फ्रेंक सीनट्रा, दोर्सडे आदि के रंगीन चित्र हॉल की पुरानी और कमजोर दीवारों पर लगा दी गयी और स्कूल चालू हो गया। रिकार्डों का छोटा-सा पुलन्दा खां साहब दिल्ली से साथ लेते आये थे। ग्रामोफोन और सैकेंडहैंड फर्नीचर फारूक से रुपया कंर्ज लेकर उन्होंने यहां खरीद लिया। कॉलेज के मनचले नौजवान और नई अमीर बनी सोसाइटी की नई फैशनेबल बेंगमों को खुदा सलामत रखे, दो-तीन साल में उनका कारोबार खूब चमक गया।

फारूक की मित्रता के कारण मेरा और उनका सम्बन्ध कुछ भाभी और जेठ का-सा हो गया। वे प्राय: मेरी कुशल-क्षेम पूछने आ जाते। उनकी पत्नी घंटों पकाने-रांधने, सीने-पिरोने की बातें किया करतीं। बेचारी मुझ से बिलकुल देवरानी जैसा स्नेह का व्यवहार करतीं। ये पति-पत्नी नि:सन्तान थे, बड़ा उदास, बेरंग, बेतुका-सा बेलगाव जोड़ा था। ऐसे लोग भी दुनिया में मौजूद हैं।

कॉलेज में नई अमरीकी प्लेटनिक चढ़ी। प्रिंसिपल से मेरा झगड़ा हो गया। अगर वह सेर तो मैं सवा सेर। मैं स्वयं कौन अब्दुल हुसैन तानाशाह से कम थी। मैंने स्तीफा कॉलेज कमेटी के सिर पर मारा और फिर सन्तनगर लाहौर वापस आ गयी। मैं पढ़ाते-पढ़ाते उकता चुकी थी। मैं वजीफा लेकर पी-एच. डी. के लिए बाहर जा सकती

थी लेकिन इस इरादे को भी कल पर टालती रही। कल अमरीकनों के दंफ्तर जाऊंगी जहां वे वजीफे बांटते हैं, कल ब्रिटिश काउन्सिल जाऊंगी, कल शिक्षा-मन्त्रालय में स्कॉलरशिप का प्रार्थनापत्र भेजूंगी।

अधिकतर समय बीत गयाक्या करूंगी? कहीं बाहर जाकर कौन-से गढ़ जीत लूंगी? मुझे जाने किस वस्तु की प्रतीक्षा थी, मुझे पता नहीं। इसी बीच एक दिन वकार भाई मेरे पास बड़े निराश होकर आये और कहने लगे, "तुम्हारी भाभी के दिमांग में फिर कीड़ा उठा। वह वीसा बनवाकर हिन्दुस्तान चली गयी और अब कभी नहीं आएगी।"

"वह कैसे...?" मैंने तनिक लापरवाही से पूछा और उनके लिए चाय का पानी स्टोव पर रख दिया।

"बात यह हुई कि मैंने उन्हें तलाक दे दिया। उनकी जुबान बहुत बढ़ गयी थी। हर समय टर्र-टर्र-टर्र-टर्र..." फिर उन्होंने सामने बिछे पलंग पर बैठकर शुध्द पतियोंवाले ढंग से अपनी पत्नी के विरुध्द शिकायतों का दफ्तर खोल दिया और स्वयं को निरपराध करने की कोशिश में व्यस्त रहे।

मैं बेपरवाही से वह सारी कथा सुनती रही। जिन्दगी की हर बात एकदम बेरंग, महत्त्वहीन, अनावश्यक और निरर्थक थी।

कुछ समय बाद वे मेरे यहां आकर बड़बड़ाए, "नौकरों ने नाक में दम कर रखा है। तुमसे कभी इतना भी नहीं होता कि आकर तनिक भाई के घर की दशा ही ठीक कर जाओ,नौकरों के कान उमेठो! मैं स्कूल भी चलाऊं और घर भी!" उन्होंने इस ढंग से शिकायत-भरे स्वर में कहा जैसे उनके घर का प्रबन्ध करना मेरा कर्तव्यहै।

कुछ दिनों बाद मैं अपना सामान बांधकर वकार साहब के कमरों में जा पहुंची और नृत्य सिखाने के लिए उनकी असिस्टेंट भी बन गयी।

इसके महीने-भर बाद पिछले रविवार को वकार साहब ने एक मौलवी बुलाकर अपने दो चिरकिटों की गवाही में मुझसे निकाह पढ़वा लिया।

अब मैं दिनभर काम-काज में व्यस्त रहती हूं। मेरा रूप-सौन्दर्य भूतकाल की रामकहानियों में शामिल हो चुका है। मुझे शोर-शराबे, पार्टियां, हंगामे बिलकुल पसन्द नहीं लेकिन घर में हर समय चा-चा किल्लियों और रॉक का शोर मचा रहता है। बहरहाल, यही मेरा घर है।

मेरे पास इस समय कई कॉलेजों में कैमिस्ट्री पढ़ाने के ऑफर हैं मगर भला कहीं पारिवारिक धन्धों से फुरसत मिलती है? नौकरों का यह हाल है कि आज रखो, कल गायब। मैंने अधिक की अभिलाषा कभी नहीं की, केवल इतना चाहा कि एक औसत दरजे की कोठी हो और सवारी के लिए मोटर ताकि आराम से आ-जा सकें। समान स्तरवाले लोगों में लज्जित न होना पड़े। चार मिलनेवाले आएं तो बिठाने के लिए ठीक-सी जगह हो, बस!

इस समय हमारी डेढ़-दो हजार रुपये की आय है जो पति-पत्नी के लिए जरूरत से ज्यादा है। आदमी अपने भाग्य से सन्तुष्ट हो जाए तो सारे-के-सारे दु:ख मिट जाते हैं।

शादी हो जाने के बाद लड़की के सिर पर छत-सी पड़ जाती है। आज-कल की लड़कियां जाने किस रौ में बह रही हैं, किस तरह ये हाथों से निकल जाती हैं। जितना सोचो,अजीब-सा लगता है, और आश्चर्य होता है।

मैंने तो कभी किसी से बनावटी प्यार तक नहीं किया। खुशवक्त, फारूक और इस पचास वर्षीय कुरूप और भौंडे आदमी के अतिरिक्त, जो मेरा पति है, मैं किसी चौथे आदमी से परिचित तक नहीं। मैं शायद बदमाश तो नहीं थी। न जाने मैं क्या थी और क्या हूं। रेहाना, सईदा, प्रभा और यह लड़की जिसकी आंखों में मुझे देखकर डर पैदा हुआ, शायद वे मुझ से अधिक अच्छी तरह मुझसे परिचित हों!

अब खुशवक्त को याद करने से फायदा? समय बीत चुका। जाने कब तक वह ब्रिगेडियर मेजर जनरल हो चुका हो। आराम की सीमा पर चीनियों के विरुध्द मोर्चा लगाए बैठा हो या हिन्दुस्तान की किसी हरी-भरी सुन्दर छावनी के मैस में बैठा मूंछों पर ताव दे रहा हो और मुस्कराता हो। शायद वह कब कश्मीर मोर्चे पर मारा जा चुका हो! क्या मालूम। अंधेरी रातों में मैं चुपचाप आंखें खोल पड़ी रहती हूं! विज्ञान ने हमें

वर्तमान युग के बहुत-से रहस्यों से परिचित करा दिया है। मैंने कैमिस्ट्री पर अनगिनत किताबें पढ़ी हैं, पहरों सोचा है। पर मुझे बड़ा डर लगता है।

खुशवक्त सिंह! खुशवक्तसिंह तुम्हें अब मुझसे मतलब ?